जा सकती है । इस कोटि के कवियों में केशवदास, चिंतामणि, सेनापति, मतिराम, भूषण, देव, भिखारीदास, पद्माकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

आचार्य केशवदास (1555-1617)

मध्य प्रदेश में रीवा के निकट बेतवा नदी के किनारे बसा ओरछा इनकी जन्मस्थली है । ओरछा के अधिपति महाराज इंद्रजीत सिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे । इनके द्वारा रचित सात ग्रंथ मिलते हैं - 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'रामचंद्रिका', 'वीरसिंहचरित्र', 'विज्ञानगीता', 'जहाँगीर जसचंद्रिका' तथा 'रतनबावनी' ।

केशवदास काल की दृष्टि से भक्ति काल के हैं लेकिन प्रवृत्ति की दृष्टि से रीतिकाल के । इस प्रकार केशव भक्तिकाल और रीतिकाल की संधि पर खड़े दिखाई देते हैं । केशवदास का उल्लेख प्राय: रामभक्ति शाखा के प्रसंग में किया जाता है, पर उन्होंने रीतिकालीन कविता के लिए एक विशेष मानसिक वातावरण तैयार करने में अहम भूमिका निभाई । वे रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं । उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र में निरूपित काव्यांगों पर विचार किया । रीतिग्रंथ पहले भी लिखे गए थे पर व्यवस्थित और सर्वांगपूर्ण प्रस्तुतीकरण का श्रेय केशव को ही है । केशव की अलंकार संबंधी कल्पना अद्‌भुत है । उनकी 'कविप्रिया' ने परवर्ती काव्य परंपरा को काफ़ी प्रभावित किया । वे सभी काव्य रूढ़ियाँ जिनका परिपालन संस्कृत काव्य में हुआ करता था, केशव ने उन्हें कविता में कहने का साहस दिखाया । केशव का काव्य विवेचन संस्कृत के काव्यशास्त्र के आचार्यों, खासकर रसवादी एवं अलंकारवादी आचार्यों के अनुकरण के कारण मौलिक नहीं माना गया ।

चिंतामणि (1609-1680-85 के बीच)

चिंतामणि कानपुर (उत्तर प्रदेश) के निकट तिकवाँपुर के निवासी थे । ये शाहजी भोंसले, शाहजहाँ और दाराशिकोह के आश्रय में रहे । ये आचार्यकवि थे । इन्होंने 'रसविलास', 'शृंगारमंजरी', 'कविकुलकल्पतरु', 'कृष्णचरित', 'काव्यविवेक' आदि ग्रंथ रचे । आचार्यत्व और कवित्व दोनों दृष्टियों से ये महत्वपूर्ण माने गए हैं । मूलत: ये रसवादी कवि हैं । इनकी भाषा शैली सरल किंतु परिमार्जित है ।

सेनापति (1589 -17वीं शती उत्तरार्ध)

सेनापति का जन्म-स्थान अनूपशहर (उत्तर प्रदेश) माना जाता है । रीतिकालीन कवियों में सेनापति का महत्वपूर्ण स्थान है । इनकी दो रचनाएँ हैं 'कवित्तरत्नाकर' तथा 'काव्यकल्पद्रुम' प्रसिद्ध हैं । कवित्तरत्नाकर में भक्तिभाव के छंद हैं और काव्यकल्पद्रुम का विषय अलंकार शास्त्र से संबंधित है ।

सेनापति की मौलिकता उनके ऋतुवर्णन में देखने को मिलती है । इनकी प्रवृत्ति अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह प्रकृति को उद्दीपन के रूप में चित्रित करने में नहीं, बल्कि प्रकृति के विभिन्न व्यापारों को अत्यंत सहज और सूक्ष्म दृष्टि से देखने में है । प्रत्येक ऋतु में उठनेवाले लोकमानस के सहज भाव इनके ऋतुवर्णन में तरंगित हो उठे हैं ।

कवि की यह सहजता उनके काव्य में प्रयुक्त भाषा में भी देखी जा सकती है । ब्रजभाषा के प्रचलित साहित्यिक तथा मौखिक रूप के प्रयोग की सहजता से इनकी रचनाएँ अद्वितीय आकर्षण का केंद्र बन गई हैं ।

मतिराम (1617-1693)

मतिराम ब्रजभाषा के प्रतिभासम्पन्न उत्कृष्ट कवि थे । ये रीतिकाल के विशिष्टांग (रस-अलंकार-छंद) निरूपक आचार्यों में प्रमुख थे । इन्होंने शृंगाररस को रस शिरोमणि माना था । अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह ये भी अनेक राजाओं के आश्रय में रहे । सम्राट जहाँगीर, बूँदी नरेश राव भावसिंह हाड़ा, कुमायूँ नरेश ज्ञानचंद, बुंदेलखंड स्थित श्रीनगर नरेश स्वरूप सिंह बुंदेला आदि के आश्रय में रहने का इन्हें अवसर मिला था । प्रसिद्ध कवि भूषण इनके भाई थे । इनके द्वारा रचित आठ ग्रंथ बताए जाते हैं - 'फूलमंजरी', 'लक्षण शृंगार', 'साहित्यसार', 'रसराज', 'ललितललाम', 'सतसई', 'अलंकार पंचाशिका' और 'वृत्तकौमुदी' ।

मतिराम के काव्य में भाव और भाषा दोनों की सहजता और सरलता इन्हें अन्य रीतिबद्ध कवियों से अलग सिद्ध करती है । काव्य की रसमयता और सालित्य के कारण इनकी लोकप्रियता भी बहुत है। रीतिकालीन परिपाटी का पालन करते हुए भी युगीन रूढ़ियों से मुक्त रहना मतिराम की विशेषता है ।

भूषण (1613-1715)

भूषण ने युगीन प्रवृत्ति से अलग वीररस को अपनी कविता में प्रमुखता दी । वे शिवाजी और छत्रसाल के आश्रय में रहे । कवि भूषण अपने युग के दो प्रसिद्ध कवियों चिंतामणि तथा मतिराम के सगे भाई के रूप में प्रसिद्ध हैं । भूषण के ग्रंथ हैं - 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' तथा 'छत्रसाल दशक' ।

भूषण की तरह अन्य कवि भी वीरता की कविताएँ लिखते थे पर वे भूषण की तरह प्रभावशाली और लोकप्रिय नहीं हो सके । भूषण की कविता ऐतिहासिक तथ्यों से प्रामाणिक है । कोरा तथ्य या कोरा वाग्वैचित्र्य कविता को उत्कृष्ट नहीं बनाता । भूषण के काव्य में तथ्य, भाव और भाषा का सुंदर संयोग है ।

चूँकि भूषण ओज के कवि हैं, अतः कविता का आवेग से भरा होना स्वाभाविक है । यह आवेग उन्हें सामाजिक जीवन से मिला । युद्ध और आक्रमण तत्कालीन युग की सच्चाई थी इसलिए यह भाव भूषण की कविता में ध्वनित होता है ।

भूषण ने रीतिकाल की परंपरा में एक अलंकार ग्रंथ 'शिवराजभूषण' लिखा है, लेकिन वह काव्यांग निरूपण की दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना विषयवस्तु और भाव के कारण । अपने युग की युद्ध और आक्रमण जैसी परिस्थितियाँ ही उनके अनुभव जगत का आधार हैं । शिवाजी की वीरता की प्रशंसा करते हुए उनके छंद में आवेग और अनुभूति की एकता दिखाई देती है ।

देव (1673-1767)

देव रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं । उत्तर प्रदेश के इटावा में उत्पन्न देव को अपने जीवनकाल में अनेक आश्रयदाता मिले लेकिन संतुष्टि कहीं नहीं मिली । रीतिकाव्य जिन कवियों के कृतित्व के कारण प्रतिष्ठित हुआ उनमें कवि देव विशेषतः उल्लेखनीय हैं । इनके द्वारा रचित बहत्तर ग्रंथ बताए जाते हैं जिनमें 'भावविलास', 'अष्टयाम', 'भवानीविलास', 'प्रेमतरंग', 'देवचरित्र', 'रसविलास', 'प्रेमचंद्रिका', 'सुजानविनोद', 'काव्यरसायन' आदि प्रमुख हैं ।

इनकी काव्य भूमि अत्यंत व्यापक है । इनके काव्य में जीवन को समग्र रूप से देखने की अंतर्दृष्टि

मिलती है । हालाँकि इन्होंने ज्ञान, वैराग्य और भक्ति विषयक रचनाएँ भी की हैं, लेकिन सफलता शृंगारिक काव्यों में ही मिली है । शृंगारिक काव्यों में शृंगार के स्थूल चित्र मात्र नहीं हैं, बल्कि प्रेम की उदात्त भूमिका की झलक भी मिलती है ।

परिष्कृत सौंदर्यबोध और मौलिक उद्भावना की दृष्टि से अन्य रीतिकालीन कवियों में देव सबसे समृद्ध हैं । देव ने भाषा के सौष्ठव, समृद्धि और अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया है ।

भिखारीदास

भिखारीदास का महत्त्व कवि और आचार्य दोनों रूपों में है । इनका जन्म उत्तर प्रदेश के जिला प्रतापगढ़ स्थित त्योंगा नामक ग्राम में हुआ था । कुछ लोगों का मत है इनका देहांत भभुआ (बिहार) मेंहुआ था । इनके ग्रंथों में प्रमुख हैं - 'रससारांश', 'काव्यनिर्णय', 'शृंगारनिर्णय' आदि ।

हालाँकि भिखारीदास में आचार्यत्व और कवित्व दोनों प्रकार की प्रतिभा थी, फिर भी ये कवि-कर्म में अधिक सफल रहे । इन्होंने साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है तथा शृंगार वर्णन में मर्यादा का ध्यान रखा है ।

पद्माकर (1753 - 1833)

इनका जन्म-स्थान सागर (मध्य प्रदेश) है । ये रीतिकाल के अत्यंत प्रसिद्ध, लोकप्रिय एवं अंतिम श्रेष्ठ कवि हैं । इनके प्रमुख ग्रंथ हैं - 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद', 'प्रबोधपचासा', 'गंगा लहरी' आदि ।

इनमें 'जगद्विनोद' लक्षण ग्रंथ है तथा 'पदमाभरण' अलंकार ग्रंथ । स्पष्ट लक्षण और सरस उदाहरण के कारण इनके ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हुए । सुगरा, सितारा, जयपुर, ग्वालियर के दरबारों में पद्माकर बहुत सम्मानित किए गए ।

पद्माकर की कविता आनंद और उल्लास का खजाना है । शृंगारिक भाव की व्यंजना में मुक्तता और खुलापन है । ब्रजमंडल के फाग के दृश्य का उनके द्वारा अद्भुत वर्णन हुआ है । यथा -

फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोविंद लै गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की पदमाकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी ।
छीनि पितंबर कम्मर तै सु विदा दई मीड़ि कपोलन रोरी ।
नैन नचाय कही मुसकाय 'लला फिर आइयो खेलन होरी' ।।

पद्माकर की अभिव्यक्ति में नाद और चित्र का संयोग है । कल्पना द्वारा इन्होंने रूप, रस, गंध, स्वाद और घ्राण संवेदना को कविता में मूर्त रूप में रख दिया है ।

रीतिसिद्ध काव्य

रीतिसिद्ध काव्यधारा के कवि मानो रस, अलंकार, ध्वनि, नायिका भेद आदि के उदाहरण के लिए कविता लिखते थे, जो रीति में बँधकर भी चल रहे थे और उससे कुछ मुक्त होकर भी । विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिसिद्ध कवियों के बारे में अपनी राय देते हुए कहा है कि "जिन्होंने रीति की सारी परंपरा सिद्ध

कर ली थी अर्थात जिन्होंने रचनाएँ रीति की बँधी परिपाटी के अनुकूल ही की हैं पर लक्षण ग्रंथ प्रस्तुत न करके स्वतंत्र रूप से अपनी रचनाएँ की हैं। इस प्रकार के कवियों को जो रीतिविरुद्ध नहीं हैं और लक्षण ग्रंथ से ऐसे नहीं बँधे हैं कि तिलभर भी उनसे हट न सकें, भले ही वे रीति की परंपरा को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाते हों, रीतिसिद्ध कहना चाहिए।"

रीतिसिद्ध कवियों की इच्छा आचार्य या कवि शिक्षक बनने की नहीं थी। इनमें स्वानुभूति की प्रधानता तो दिखाई देती है लेकिन काव्य कौशल के प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने इनकी शैली को अलंकृत बना दिया है।

रीतिसिद्ध कवि संस्कृत और प्राकृत की मुक्तक परंपरा से प्रभावित हैं। इनकी भाषा विद्यापति, चंडीदास, सूरदास, रहीम, तुलसीदास आदि की भाषा से प्रेरित है। इन पर फारसी काव्य का प्रभाव भी देखा जा सकता है। इनकी कविताओं में नारी का रूपाकर्षण प्रमुख है। फिर भी इनके काव्य का क्षेत्र रीतिबद्ध की अपेक्षा विस्तृत है। इनमें शृंगार के साथ-साथ भक्ति, प्रशस्ति, नीति, ज्ञान, वैराग्य और प्रकृति के आलंबन, उद्दीपन रूपों का वर्णन भी विद्यमान है। इस वर्ग के कवियों में बिहारी का नाम सबसे ऊपर है।

बिहारी (1595 -1663)

बिहारी का जन्म ग्वालियर में हुआ था। अपने पिता के गुरु नरहरिदास के यहाँ बिहारी ने संस्कृत, प्राकृत के काव्यग्रंथों का अध्ययन किया था। इन्होंने फारसी काव्य का अभ्यास भी किया था। ये शाहजहाँ के कृपापात्र थे तथा जोधपुर, बूँदी आदि अनेक रियासतों से भी इन्हें वृत्ति मिलती थी।

मुक्तक परंपरा में बिहारी बेजोड़ हैं। इनके यश का आधार इनका एकमात्र ग्रंथ सतसई है। सतसई दोहों का संग्रह है, जिसमें बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिका-भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण आदि का ध्यान रखा है। सतसई में आलंकारिक चमत्कार और भाव सौंदर्य दोनों ही हैं तथा इसे मुक्तक काव्य की प्रतिनिधि रचना के रूप में महत्त्व प्राप्त है। सतसई के द्वारा इन्होंने जो ख्याति अर्जित की वह हिंदी का अन्य कवि नहीं कर सका। इनकी यह ख्याति निराधार नहीं है। आचार्य शुक्ल ने बिहारी के दोहों को 'रस के छोटे-छोटे छींटे' कहा है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि बिहारी का काव्य मुक्तक काव्य की कसौटी पर खरा उतरता है। इसकी लोकप्रियता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इसकी अनगिनत टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं।

बिहारी ने संयोग शृंगार का वर्णन प्रमुखता से किया है। इसके अतिरिक्त इनकी सतसई में भक्ति, नीति, प्रशस्ति आदि विषयक दोहे भी हैं।

बिहारी की काव्यभाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। इनकी भाषा व्याकरण से अनुशासित है और विषय के अनुरूप चुस्त है। भाषा के व्यवस्थित प्रयोग और परिमार्जित शैली के कारण उसमें साहित्यिक दोष ढूँढ़ निकालना मुश्किल है। इनके दोहों में प्रयुक्त अलंकार सौंदर्य को दूना बढ़ा देते हैं। भाषा से इन्होंने चमत्कार उत्पन्न किया है लेकिन अनुभूति की उपेक्षा कर के नहीं। दोनों का संतुलन ही बिहारी को अन्य कवियों से अलग सिद्ध करता है।

रीतिमुक्त काव्य

रीतिमुक्त काव्य की प्रकृति रीतिबद्ध काव्य से भिन्न थी । रीतिबद्ध कवियों का आधार प्राचीन काव्य प्रणाली और शास्त्रीयता थी । रीतिमुक्त कवियों ने शास्त्रीयता को अस्वीकार कर दिया तथा अनुभूति के आवेग में रचनाएँ कीं । ये वैयक्तिकता के आग्रही थे, अत: दरबारी मर्यादा में बँधकर रचना करना इनकी प्रकृति नहीं थी । इनके प्रेम का स्वरूप लौकिक था पर वह इतना गहन और व्यापक था कि अलौकिक ऊँचाइयों को स्पर्श करता था । इनके काव्य में एकांगी प्रेम की प्रधानता है । रीतिबद्ध कवियों के स्थूल और मांसल प्रेम के स्थान पर अंतर्मुखी प्रेम रीतिमुक्त कवियों को अभीष्ट था । इनके काव्य में संयोग की अपेक्षा विरह वर्णन की अधिकता है । हिंदी कविता में स्वच्छंद चेतना का प्रथम उन्मेष इनके काव्य में हुआ, अत: इन्हें बीसवीं शती के स्वच्छंदतावादी कवियों का पूर्वज कहा जा सकता है । इस धारा के प्रमुख कवि हैं - घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव । इनमें घनानंद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं ।

घनानंद (1658-1739)

घनानंद ने अपने काव्य में आदि से अंत तक अपने और सुजान के संबंध को ही दुहराया है । कहा जाता है सुजान नामक नर्तकी से इन्हें प्रेम था । यह जनश्रुति तब सत्य प्रतीत होती है जब अपनी रचनाओं में वे सुजान का नाम रटते और उसके लिए तड़पते दिखाई देते हैं । घनानंद के प्रमुख ग्रंथ हैं - 'सुजान सागर', 'विरह लीला', 'रसकेलिबल्ली' और 'कृपाकांड' ।

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्राय: सभी गुण घनानंद की काव्य शैली में मिलते हैं । जैसे - भावात्मकता, वक्रता, लाक्षणिकता, भावों की वैयक्तिकता, रहस्यात्मकता, मार्मिकता, स्वच्छंदता आदि ।

अपने जीवन और कविता का अर्थ बताते हुए घनानंद कहते हैं -

यो घन आनंद छावत भावत जान सजीवन और तें आवत ।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरो कवित्त बनावत ॥

तात्पर्य यह कि घनानंद का काव्य उनके जीवन की सच्ची अनुभूतियों का सहज-स्वच्छंद प्रकाशन है । घनानंद की भाषा प्रांजल ब्रजभाषा का उत्कृष्ट उदाहरण है । मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा कवि ने उसे जीवन के और अधिक निकट लाने का सफल प्रयास किया है ।

आलम

आलम का काव्य भावप्रधान है । घनानंद की भाँति इनका वियोग भी मार्मिक और आंतरिक है । इनके काव्य में अभिलाषा की प्रधानता है, इसलिए प्रिय को पाकर भी तृप्ति नहीं मिलती । आलम ने रीतिबद्ध परंपरा से मुक्त होकर मन की उलझन और व्यथा की अनेक दशाओं का चित्रण किया है । उनके काव्य में नैराश्य, मार्मिकता, व्यथा, मूकता आदि विशेषताएँ बार-बार अभिव्यक्त हुई हैं ।

बोधा

घनानंद की तरह बोधा ने भी प्रेम में विरह का दंश भोगा था । यह बात उनकी कविता में बार-बार प्रकट हुई है । 'विरहबारीश' और 'इश्कनामा' में इस भाव की अभिव्यक्ति हुई है ।

बोधा के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है किसी बात को बेधड़क और निःसंकोच कहना । उनकी कविता में बनावटीपन नहीं है ।

बोधा के काव्य में प्रेम की पीड़ा के दो रंग मिलते हैं । एक पीड़ा प्रेम की कठिन राह पर चलने की है - "यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धार पे धावनो है ।" तो दूसरी, व्याकुलता और धैर्य के द्वंद्व को किसी से न कह पाने की - "कहते न बनै सहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबो करै ।"

ठाकुर

ठाकुर सच्चे उमंग के कवि थे । प्रेम के साथ ही ठाकुर ने लोक जीवन के अन्य पक्षों पर भी अपने हार्दिक उल्लास की अभिव्यक्ति की है । उनकी जीवन दृष्टि में मन की मौज और स्वाभिमान की सुंदर झलक मिलती है - "ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के/जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के ।"

उनकी मस्ती और स्वच्छंद मूल्यवत्ता का प्रमाण उनकी ये पंक्तियाँ हैं -

विधि के बनाए जीव जेते हैं जहाँ के तहाँ
खेलत फिरत तिन्हैं खेलन फिरन देव ।"

ठाकुर व्यक्ति-स्वतंत्रता के हिमायती कवि थे । वे कवि परंपरा से चली आती हुई उपमाओं के सहारे कविता लिखने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि उपमानों का प्रयोग करना कविता नहीं है । लोग सभा के बीच कविता को ढेले की तरह गिराते हैं जैसे कविता करना खेल करना हो - "ढेल सा बनाय आय मेलत सभा बीच/लोगन कवित कीनो खेल करि जानो है ।"

इस काल में जब धीरे-धीरे भक्ति में धार्मिकता का और लोकोन्मुखता का आवेश कम होने लगा तो कवियों ने राधा-कृष्ण के बहाने आश्रयदाताओं की शृंगार लीला का वर्णन करना प्रारंभ कर दिया । शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों की कविता का प्राण है । यद्यपि रीति निरूपण की प्रवृत्ति के समान इस प्रवृत्ति के भीतर स्वतंत्र अंतःप्रवृत्तियाँ नहीं हैं तथापि विलासिता पूर्ण उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति और नारी के प्रति सामंती दृष्टि के होते हुए भी इसमें गार्हस्थ्य प्रेम की व्यापक स्वीकृति देखने को मिलती है ।

रीतिकाल में उपर्युक्त प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अनेक गौण प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं । इस काल में वीरता, भक्ति, नीति, वैराग्य आदि भावों के अनेक अच्छे कवि हुए हैं ।

रीतिकाल के वीर काव्य में कवियों ने जातीय हित को प्रमुखता दी है । हालाँकि आदिकाल और रीतिकाल दोनों युगों में सामंतों की प्रशस्ति में वीर काव्य की रचना हुई है लेकिन कथ्य की ऐतिहासिकता, प्रामाणिकता, भाव व्यंजना की निपुणता, ध्वन्यात्मकता और भाषा की शुद्धता की दृष्टि से रीतिकाल का वीरकाव्य आदिकालीन वीरकाव्य से श्रेष्ठ सिद्ध होता है । रीतिकालीन वीर कवियों में मानकवि, भूषण, सूदन, जोधराज आदि प्रमुख हैं ।

रीतिकालीन कवियों के लिए भक्ति धार्मिकता की परिचायक नहीं थी, वह दरबारी वातावरण के बाहर विषय-वासनाजन्य दुखों से आकुल मन के लिए शरणभूमि थी । सामान्य रूप से विष्णु के राम और

कृष्ण–इन दो अवतारों में विशेष आस्था रखते हुए भी ये कवि गणेश, शिव और शक्ति में वैसी ही श्रद्धा रखते थे । इसलिए कहा जा सकता है कि ये किसी विशिष्ट संप्रदाय के अनुयायी नहीं थे । ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के रूप में आज साधारण आस्तिक हिंदुओं में देवी–देवताओं के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति का भाव रहता है, वही इनमें भी था ।

भक्ति यदि इन कवियों के आकुल मन की शरणभूमि थी तो नीति संघर्षमय दरबारी जीवन के घात-प्रतिघातों से उत्पन्न मानसिक द्वंद्व के विरेचन के परिणामस्वरूप शांति का आधार थी । इसीलिए आत्मोपदेश और अन्योक्तिपरक छंदों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्राय: देखने को मिलती है । इस प्रकार वृंद, गिरिधर की नीतिपरक रचनाएँ काफी लोकप्रिय रहीं । गौण प्रवृत्तियों में राज प्रशस्ति की प्रवृत्ति शृंगारी प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन की परिचायक है जबकि भक्ति और नीति की प्रवृत्तियाँ उससे निवृत्ति की ।

रीतिकाल की भाषा मुख्य रूप से ब्रजभाषा थी । कुछ कवियों ने अवधी को भी अपनाया था । इस काल की काव्यभाषा वातावरण के अनुसार फारसी से भी प्रभावित थी । कहने को इस काल में प्रबंधकाव्य भी लिखे गए जो महज आदिकाल की परंपरा का निर्वाह है । इस युग में प्रधानता मुक्तक की ही रही । कवित्त, सवैया, दोहा, कुंडलिया आदि इस काल के बहुप्रयुक्त छंद थे । इस काल में अलंकारों की भी प्रधानता रही । ब्रजभाषा का रूप यद्यपि सभी कवियों में व्यवस्थित नहीं मिलता लेकिन घनानंद, मतिराम और पद्माकर में यह पर्याप्त व्यवस्थित है । एक तरफ़ उपयुक्त शब्दों के चयन में देव बेजोड़ कवि ठहरते हैं तो दूसरी तरफ़ ठाकुर की कविता में कहावतों की प्रचुरता है ।

17वीं शती के उत्तरार्ध से 19वीं शती के पूर्वार्ध तक के कालखंड में बिहारी साहित्यकारों की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति रही । इनकी रचनाओं का बल प्राप्त कर हिंदी गद्यरूप की ओर अग्रसर होती चली गई । इस कार्य में मैथिली, ब्रजभाषा, अवधी के साथ-साथ खड़ी बोली और भोजपुरी के रचनाकारों का भी उल्लेखनीय योगदान है । ये भाषाएँ एक दूसरे को प्रभावित करती दीख पड़ती हैं । अधिकांश कवियों की भाषा में हिंदी की विविध बोलियों के शब्दों और अन्य भाषिक तत्त्वों के मेल द्वारा आगे की रचना-भाषा का आधार निर्मित हो रहा था । इन कवियों की रचनाओं में शृंगार और भक्ति पक्ष की प्रधानता है । निर्गुणोपासना और प्रेममार्ग की रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में हैं ।

भाषा की स्वच्छता, भाव की मधुरता और छंद प्रवाह में सुगमता की दृष्टि से 17वीं शती के ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली और मैथिली के उल्लेखनीय बिहारी कवि इस प्रकार हैं –

ब्रजभाषा – चंद्रमौलि मिश्र ('उदवंत प्रकाश'), दिनेश द्विवेदी ('रस रहस्य' और 'नखशिख'), राधाकृष्ण ('रागरत्नाकर'), वंशमणि ('रस चंद्रिका'), और हरिचरण दास (रसिकप्रिया, कवि प्रिया, बिहारी सतसई तथा भाषा भूषण की टीकाएँ) ।

अवधी – कुंजनदास, जगन्नाथ, जयरामदास (छंद विचार), तुलाराम मिश्र, बेनीराम, रामरहस्य साहब और महेश्वरदास ।

खड़ी बोली – इंशकवि, गुमानी, चंद्रकवि, जॉन क्रिश्चियन, ब्रह्मदेव नारायण 'ब्रह्म', वृंदावन

(छंदशतक) और साहब रामदास ।

मैथिली – अनिरुद्ध, कुलपति, केशव, चक्रपाणि, जयानंद, नंदीपति, निधि उपाध्याय, भंजन, भवेश, मानबोध (हरिवंश का अनुवाद), रमापति उपाध्याय (रुक्मिणी परिणय), रामेश्वर, लाल, वेणीदत्त, ब्रजनाथ और श्रीकांत (कृष्ण-जन्म) ।

इस कालखंड के अंतिम चरण में बिहार के सिद्धपुरुष लक्ष्मीनाथ परमहंस और हिंदी की आधुनिक गद्य शैली के निर्माताओं में अन्यतम पं० सदल मिश्र ('नासिकेतोपाख्यान') की उपस्थिति विशेष महत्त्व की है । इस युग में उत्तर बिहार के महात्मा लक्ष्मीनाथ गोसाई बड़े भक्त कवि हुए ।

इस काल में मगही में रचित कुछ गीतों की भी चर्चा है जिसके लिए गया के पाठकबिगहा निवासी हरिनाथ पाठक का नाम उल्लेखनीय है ।

इस काल में आधुनिक काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों के बीज भी कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं । रस की दृष्टि से भक्ति अथवा शांति, शृंगार एवं वीर रसों की प्रधानता है । भक्ति एवं शृंगार रस की रचनाओं से यह युग भरा पड़ा है । वीर रस की रचनाएँ मुख्य रूप से अलिराज, कमलाधर मिश्र, रामकवि तथा शिवकलि राम की ही मिलती हैं । प्रकृति के चितेरों में नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह, रामसफल राय, यज्ञदत्त त्रिपाठी, चंदेश्वरी राय, परमानंद दास तथा सोहनलाल का नाम आता है ।

इस काल खंड में गद्य रचना की प्रवृत्ति का उदय एक प्रमुख घटना है । बिहार के साहित्यकारों में पं० चंदा झा को छोड़कर अधिकतर लोगों ने खड़ी बोली में गद्य रचनाएँ की हैं । उनकी गद्य रचना मैथिली में है । भिन्नक मिश्र, अयोध्या प्रसाद मिश्र, हरनाथ प्रसाद खत्री, नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह, भगवान प्रसाद 'रूपकला', संसारनाथ पाठक तथा गणपति सिंह इस समय के उल्लेखनीय गद्यकार हैं ।

इस काल के गद्यकारों ने नाटक को भी प्रमुखता दी । अन्य विधाओं में जीवनी साहित्य के अंतर्गत रामलोचन मिश्र कृत 'आत्मजीवनी' का तथा उपन्यास के अंतर्गत भिन्नक मिश्र रचित 'विद्यावती' का उल्लेख किया जा सकता है । काव्य, भाषा, धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, संगीत, गणित, नीति, राजनीति, ज्योतिष, आदि भिन्न-भिन्न शास्त्रों पर भी लेखकों ने अपनी लेखनी चलाई है ।

19वीं शती पूर्वार्द्ध के महत्त्वपूर्ण बिहारी रचनाकारों में भगवान प्रसाद 'रूपकला', चंदा झा, युगलानन्य शरण जी 'हेमलता', लक्ष्मीसखी तथा सोहनलाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । श्री रूपकला अखिल भारतीय हरिनाम यश संकीर्तन सम्मेलन के संस्थापक एक प्रमुख संत कवि थे । इन्होंने भोजपुरी और अन्य भाषाओं में भी बहुत मार्मिक रचनाएँ की हैं । चंदा झा आधुनिक मैथिली साहित्य के जन्मदाता माने गए हैं और अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण मिथिला में विद्यापति की तरह समादृत हैं । युगलानन्य शरण जी 'हेमलता' के संबंध में कहा जाता है कि इन्होंने विभिन्न विषयों के चौरासी ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें पचहत्तर इनके आश्रम में सुरक्षित हैं । काशी नागरी प्रचारिणी सभा में भी इनके अधिकांश ग्रंथ सुरक्षित हैं । लक्ष्मीसखी ने 'सखी संप्रदाय' को अपनी रचनाओं का बल दिया । सोहनलाल इस युग के एक प्रमुख रचनाकार थे जिनके संबंध में अयोध्या प्रसाद खत्री ने लिखा है कि "सोहनलाल हिंदी की 'मुंशी शैली' के जनक थे ।"

❑❑❑